

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 11 अध्याय 3: माया से मुक्ति

15 September 2026



राजा निमि के यज्ञ का संवाद अपने सर्वोच्च विषय में गहराता है: वह कौन-सी माया-शक्ति है जो आत्मा को जन्म-मृत्यु से बाँधती है, और किस निश्चित मार्ग से मनुष्य उसके पार जा सकता है? नौ योगीन्द्रों में से तीन क्रमशः उत्तर देते हैं, और माया के स्वरूप, सच्चे गुरु के आश्रय, अविनाशी आत्मा तथा उस प्रेममयी उपासना को प्रकट करते हैं जो आत्मा को मुक्त कर देती है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है, जो श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं तथा शिक्षाओं के माध्यम से एक भक्तिपूर्ण यात्रा है। पिछले प्रवचन में प्रबुद्ध राजा निमि ने अपने यज्ञ में नौ सिद्ध ऋषियों का स्वागत किया, और प्रथम दो — कवि तथा हवि — ने प्रेममयी भक्ति के मार्ग तथा भगवान् के सच्चे भक्त के लक्षण प्रकट किए। अब राजा के प्रश्न सबसे गूढ़ रहस्य की ओर मुड़ते हैं: भगवान् की वह माया-शक्ति जो देहधारी आत्मा को जन्म-मृत्यु के चक्र में बाँधती है, तथा वह मार्ग जिससे वह आत्मा मुक्त हो सकती है। उत्तर में, तीन और योगीन्द्र — अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध तथा पिप्पलायन, और अन्ततः आविर्होत्र — क्रमशः बोलते हैं, जिससे यह तृतीय प्रवचन बन्धन तथा मुक्ति का एक सम्पूर्ण मानचित्र बन जाता है।

अध्याय को जानकारो

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 11 (एकादश स्कन्ध)
- अध्याय: 3 (तृतीय प्रवचन)
- अध्याय शीर्षक: माया से मुक्ति
- प्रधान वक्ता: ऋषि अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन तथा आविर्होत्र, क्रमशः उत्तर देते हुए; समस्त संवाद नारद द्वारा वसुदेव को स्मरण कराया गया तथा सुकदेव गोस्वामी द्वारा राजा परीक्षित को कहा गया
- प्रधान श्रोता: राजा निमि तथा उनकी सभा; ढाँचे के भीतर, वसुदेव तथा राजा परीक्षित
- मुख्य स्थान: प्राचीन अजनाभ (भारतवर्ष) में राजा निमि का यज्ञ-स्थल
- केन्द्रीय विषय: भगवान् की माया-शक्ति का स्वरूप, सृष्टि तथा प्रलय की प्रक्रिया, सच्चे गुरु का आश्रय, अविनाशी आत्मा, तथा कर्म एवं उपासना का वह मार्ग जो आत्मा को माया के पार ले जाता है
- प्रधान श्लोक-सीमा: स्कन्ध 11, अध्याय 3, श्लोक 1-55
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय का सन्दर्भ

अध्याय 2 में, देवर्षि नारद ने द्वारका में वसुदेव के यहाँ पधारकर राजा निमि तथा नौ योगीन्द्रों — ऋषभ के सिद्ध पुत्रों — के एक प्राचीन मिलन का स्मरण कराया। ऋषि कवि ने *भागवत-धर्म* का वर्णन किया — भगवान् की वह प्रेममयी सेवा जो आत्मा को समस्त भय से मुक्त करती है — और ऋषि हवि ने भगवान् के भक्तों के गुणों का वर्णन किया। राजा, प्रसन्न होकर, अपनी जिज्ञासा जारी रखते हैं, और शेष ऋषि अब उनके समक्ष रखे गए प्रश्नों को ग्रहण करते हैं।

राजा निमि माया के विषय में पूछते हैं

राजा निमि ने ऋषियों से भगवान् की माया का सच्चा स्वरूप प्रकट करने की प्रार्थना की — भगवान् विष्णु की वह मोहिनी शक्ति जो स्वयं माया के जानकारों को भी मोहित कर देती है। संसार के दुःखों से अत्यन्त पीड़ित एक मर्त्य होकर, उन्होंने कहा, उन्होंने श्रीहरि के विषय में उनके अमृत-तुल्य वचन सुने हैं, जो ऐसी पीड़ा के लिए ही औषधि हैं, और फिर भी तृप्ति नहीं होती, वे बार-बार सुनने की लालसा रखते हैं (श्लोक 1-2)।

अन्तरिक्ष बोलते हैं — भँवर में फँसी आत्मा

ऋषि अन्तरिक्ष ने उत्तर दिया। माया, उन्होंने समझाया, वह शक्ति है जिसके द्वारा सृष्टि के स्रोत रूप में प्रकट होने वाले परम प्राचीन पुरुष, स्थूल तत्त्वों के माध्यम से छोटे-बड़े समस्त प्राणियों की रचना करते हैं — देहधारी आत्माओं के, जो उन्हीं के अंश हैं, भोग तथा अन्ततः मुक्ति के लिए। प्रत्येक रूप में उसके अन्तर्यामी के रूप में प्रवेश करके, परम पुरुष स्वयं को मन तथा दस इन्द्रियों के रूप में विभाजित करते हैं, और उनके द्वारा आत्मा संसार के सुखों का स्वाद लेती है (श्लोक 3-4)।



अन्तर्यामी भगवान् से प्रकाशित होकर, देहधारी आत्मा इन्द्रिय-विषयों का भोग करती है, रचित शरीर से तादात्म्य कर लेती है, और कर्म तथा फल के अविराम चक्र में खिंच जाती है (श्लोक 5-7)।

उस अन्तर्यामी से प्रकाशित इन्द्रियों द्वारा इन्द्रिय-सुखों का भोग करते हुए, अन्तरिक्ष ने आगे कहा, देहधारी आत्मा स्वयं को रचित शरीर मान लेती है और उसमें आसक्त हो जाती है। स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों से कर्म करती हुई तथा अनेकों पूर्व-कर्मों के प्रिय-अप्रिय फल भोगती हुई, वह अनेक दोषों को साथ लिए, सृष्टि के अन्तिम प्रलय तक असहाय भाव से जन्म-मृत्यु में घूमती रहती है (श्लोक 5-7)।

महाप्रलय

अन्तरिक्ष ने तब उस प्रलय का वर्णन किया। जब तत्त्व लुप्त होने को होते हैं, तब अनादि काल-शक्ति व्यक्त जगत् को पुनः अव्यक्त मूल प्रकृति की ओर खींच लेती है। सौ वर्षों का भयंकर अनावृष्टि तीनों लोकों को झुलसा देती है; संकर्षण के मुखों से उठती अग्नि नीचे की गहराइयों से सब कुछ जलाती हुई, वायु से प्रेरित होकर हर दिशा में फैल जाती है; प्रलय के मेघ हाथी की सूँड़ जितनी मोटी धाराओं से सौ वर्षों तक वर्षा करते हैं, जब तक कि सम्पूर्ण विश्व जल में डूब नहीं जाता (श्लोक 8-11)।



युग के अन्त में तत्त्व एक-दूसरे में लीन होते हैं — पृथ्वी जल में, जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाश में — जब तक सब कुछ अव्यक्त में विलीन नहीं हो जाता, जो भगवान् की त्रिविध माया को प्रकट करता है (श्लोक 12-16)।

एक-एक करके, उन्होंने कहा, तत्त्व अपने गुणों से रहित होकर अपने कारणों में लीन हो जाते हैं — पृथ्वी जल में, जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाश में, और आकाश अहंकार में, जो महत्-तत्त्व में, फिर मूल प्रकृति में, और अन्ततः ब्रह्म में लीन हो जाता है। ऐसी है, अन्तरिक्ष ने निष्कर्ष दिया, भगवान् की त्रिविध माया — सत्त्व, रजस् तथा तमस् से बुनी हुई — जो जगत् की रचना, पालन तथा संहार करती है (श्लोक 12-16)।

निमि पूछते हैं — माया के पार कैसे जाएँ

राजा निमि ने तब समस्त प्रवचन के हृदय में स्थित व्यावहारिक प्रश्न पूछा: जो मनुष्य स्थूल शरीर को ही अपना स्वरूप मानते हैं, वे इस दिव्य माया को सरलता से कैसे पार करें, जो उनके लिए इतनी दुस्तर है जिन्होंने अपने मन को वश में नहीं किया (श्लोक 17)?

प्रबुद्ध बोलते हैं — सच्चे गुरु का आश्रय लो

ऋषि प्रबुद्ध ने उत्तर दिया। सर्वप्रथम, उन्होंने कहा, यह देखना चाहिए कि पति-पत्नी, सुख तथा दुःख से मुक्ति के लिए प्रयत्न करते हुए, उल्टा ही फल पाते हैं; कष्टसाध्य परिश्रम से अर्जित और मृत्यु में समाप्त होने वाले धन से, अथवा घर, सन्तान, मित्र तथा गोधन से, जो सब क्षणभंगुर हैं, कौन-सा स्थायी सुख मिल सकता है? स्वर्ग-लोक भी, जो सत्कर्मों से मिलते हैं, क्षणभंगुर हैं तथा प्रतिस्पर्धा, कलह और पतन के भय से त्रस्त हैं। यह देखकर, जो परम कल्याण की इच्छा रखता है उसे सच्चे गुरु का आश्रय लेना चाहिए।

तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ।

शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् ॥ २१ ॥

tasmād gurun̄ prapadyeta jijñāsuḥ śreya uttamam śābde pare ca niṣṇātaṁ brahmaṇy upaśamāśrayam

अर्थ: अतः जो परम कल्याण की खोज में है, उसे ऐसे गुरु का आश्रय लेना चाहिए जो शास्त्रों में निपुण है, परम सत्य का साक्षात्कार कर चुका है, तथा राग-द्वेष से रहित होकर शान्ति में स्थित है। (स्कन्ध 11, अध्याय 3, श्लोक 21)



एक सच्चा जिज्ञासु ऐसे शान्त, शास्त्र-निपुण गुरु के समीप जाता है जिसने सत्य का साक्षात्कार किया है, और भगवान् के भक्तों के जीवन-मार्ग सीखने के लिए भक्तिपूर्ण सेवा अर्पित करता है (श्लोक 21-22)।

ऐसे गुरु को अपने ही स्वरूप तथा प्रिय आराध्य के रूप में सेवा करते हुए, प्रबुद्ध ने कहा, शिष्य भगवान् के भक्तों के प्रिय जीवन-मार्ग सीखता है, जिनसे श्रीहरि — जो सबकी आत्मा हैं और अपने भक्तों को स्वयं को दे देते हैं — प्रसन्न होते हैं। वह शरीर, सन्तान तथा सम्पत्ति से वैराग्य और भगवान् के भक्तों में आसक्ति सीखता है; करुणा, मैत्री तथा नम्रता; शौच, सहनशीलता, वाणी का संयम, शास्त्र-अध्ययन, सत्यनिष्ठा, ब्रह्मचर्य, अहिंसा तथा सुख-दुःख में समभाव सीखता है। वह सर्वत्र व्याप्त आत्मा तथा ईश्वर को देखना, सरलता एवं सन्तोष से रहना, और अपने वचनों तथा कर्मों को सत्य के प्रति समर्पित करना सीखता है (श्लोक 18-26)।

भगवान् के भक्तों का जीवन

प्रबुद्ध ने इस जीवन की मधुरता का वर्णन किया। भक्त श्रीहरि के अवतार, लीलाओं तथा गुणों का श्रवण, कीर्तन एवं मनन करना, और सब कुछ उन्हीं के लिए करना सीखता है; अपने यज्ञ, दान, तप, सदाचार — यहाँ तक कि पत्नी, सन्तान, घर तथा अपना जीवन भी — भगवान् को अर्पित करना सीखता है; उन्हें प्रेम करता है जिन्होंने कृष्ण को अपनी आत्मा जाना है, और समस्त प्राणियों की भगवान् के स्वरूप मानकर सेवा करता है। श्रीहरि का, जिनकी महिमा असंख्य पापों को नष्ट कर देती है, एक-दूसरे को स्मरण कराते हुए, भक्तों के हृदय उमड़ पड़ते हैं।

क्वचिद् रुदन्त्यच्युतचिन्तया क्वचि-
द्धसन्ति नन्दन्ति वदन्त्यलौकिकाः ।
नृत्यन्ति गायन्त्यनुशीलयन्त्यजं
भवन्ति तूष्णीं परमेत्य निर्वृताः ॥ ३२ ॥

kvacid rudanty acyuta-cintayā kvacid dhasanti nandanti vadanty alaukikāḥ nṛtyanti gāyanty anuśīlayanty ajam bhavanti tūṣṇīm param etya nirvṛtāḥ

अर्थ: कभी अच्युत भगवान् का स्मरण कर वे रोते हैं; कभी हँसते, आनन्दित होते तथा उनसे ऐसे बात करते हैं मानो वे समीप ही हों; वे नाचते, गाते तथा अजन्मा भगवान् का ध्यान करते हैं; और कभी, परम को प्राप्त कर, मौन एवं शान्त हो जाते हैं — उनका आचरण समस्त लौकिक व्यवहार से परे हो जाता है। (स्कन्ध 11, अध्याय 3, श्लोक 32)



दिव्य प्रेम से भरे, भगवान् के भक्त एक साथ श्रीहरि का स्मरण करते हैं — रोते, हँसते, गाते तथा नाचते हुए — जब तक, परम को प्राप्त कर, वे शान्त मौन में विश्राम नहीं पा लेते (श्लोक 32)।

इस प्रकार भगवान् के भक्तों के जीवन-मार्ग सीखते तथा उनका अनुसरण करते हुए, जिसकी भक्ति शुद्ध प्रेम में परिपक्व होती है, भक्त माया के अगाध सागर को सरलता से पार कर जाता है।

इति भागवतान् धर्मान् शिक्षन् भक्त्या तदुत्थया ।
नारायणपरो मायामञ्जस्तरति दुस्तराम् ॥ ३३ ॥

iti bhāgavatān dharmān śikṣan bhaktyā tad-utthayā nārāyaṇa-paro māyām añjas tarati dustarām

अर्थ: इस प्रकार भक्ति-धर्मों को सीखकर, और उनसे उत्पन्न भक्ति के द्वारा नारायण के प्रति पूर्णतः समर्पित होकर, मनुष्य अन्यथा दुस्तर माया को सरलता से पार कर जाता है। (स्कन्ध 11, अध्याय 3, श्लोक 33)

पिप्पलायन बोलते हैं — परम सत्य

राजा निमि ने तब ऋषियों से परम आत्मा का, जिसे नारायण नाम से पुकारा जाता है, सच्चा स्वरूप समझाने की प्रार्थना की (श्लोक 34)। ऋषि पिप्पलायन ने उत्तर दिया कि परम सत्य ही जगत् की रचना, पालन तथा संहार का कारण है, फिर भी उसका अपना कोई कारण नहीं; वह जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति में, और उन सबसे परे भी विद्यमान है, और उसी से शरीर, इन्द्रियाँ, प्राण तथा मन अपने कार्य करते हैं। जैसे चिनगारियाँ उस अग्नि को प्रकाशित नहीं कर सकतीं जिससे वे उत्पन्न होती हैं, वैसे ही मन, वाणी, दृष्टि, बुद्धि तथा इन्द्रियाँ उसे ग्रहण नहीं कर सकतीं; वेद भी उसका वर्णन केवल संकेत से करता है, उसके विषय में समस्त सीमित शब्दों का निषेध करते हुए (श्लोक 35-37)।



अविनाशी आत्मा, अजन्मा तथा अमर, शुद्ध चेतना के रूप में प्रकाशित होती है — प्रत्येक अवस्था का मौन साक्षी — और भगवान् की प्रेममयी भक्ति से शुद्ध हुए हृदय को साक्षात् प्रकट होती है (श्लोक 38-40)।

यह आत्मा, पिप्पलायन ने आगे कहा, न कभी जन्म लेती है न मरती है, न बढ़ती है न क्षीण होती है; वह आने-जाने वाली समस्त वस्तुओं की साक्षी है, सर्वव्यापी तथा नित्य शुद्ध चेतना है। जैसे सूर्य का प्रकाश स्वच्छ नेत्रों को स्वयं प्रकट होता है, वैसे ही आत्मा का सत्य उस पुरुष के शुद्ध हृदय को साक्षात् प्रकट होता है जो भगवान् के प्रति सच्ची भक्ति रखता है, उनके चरणों की लालसा करता है, और गुणों तथा कर्मों से उत्पन्न समस्त मल से मन को स्वच्छ कर चुका है (श्लोक 38-40)।

आविर्होत्र बोलते हैं — कर्म तथा उपासना का मार्ग

राजा ने तब कर्म-योग के विषय में पूछा जिससे मनुष्य शीघ्र अपने कर्म को भस्म कर दे और उस ज्ञान को प्राप्त करे जो समस्त कर्म से मुक्ति के पश्चात् आता है; और उन्होंने पूछा कि जिन ऋषियों से उनके पिता ने कभी प्रश्न किया था, वे मौन क्यों रहे (श्लोक 41-42)। ऋषि आविर्होत्र ने उत्तर दिया कि विहित कर्म, निषेध तथा उनके उल्लंघन केवल वेदों से ही जाने जा सकते हैं, जो भगवान् की वाणी हैं; यहाँ विद्वान् भी मोहित हो

जाते हैं, क्योंकि वेद गूढ़ रीति से बोलता है।

परोक्षवादो वेदोऽयं बालानामनुशासनम् ।

कर्ममोक्षाय कर्माणि विधत्ते ह्यगदं यथा ॥ ४४ ॥

parokṣa-vādo vedo 'yaṁ bālānām anusāsanam karma-mokṣāya karmāṇi vidhatte hy agadaṁ yathā

अर्थ: यह वेद परोक्ष, गूढ़ भाषा में बोलता है, अपरिपक्व को पिता के समान अनुशासित करता हुआ; वह कर्मों का विधान करता है ताकि अन्ततः मनुष्य को समस्त कर्म से परे ले जाए — जैसे कड़वी औषधि बालक को मीठे के बहाने दी जाती है। (स्कन्ध 11, अध्याय 3, श्लोक 44)

जो वेदों के विहित कर्मों की उपेक्षा करता है वह पाप में गिरता है और मृत्यु से मृत्यु तक भटकता है, आविर्होत्र ने कहा; परन्तु जो विहित कर्मों को फल की आसक्ति के बिना, सब भगवान् को अर्पित करके करता है, वह परम सिद्धि को प्राप्त होता है, जो कर्म से मुक्ति से उत्पन्न ज्ञान है। हृदय की ग्रन्थि — “मैं” तथा “मेरा” का मिथ्या भाव — काटने के लिए, मनुष्य को वैदिक तथा तान्त्रिक विधि से भगवान् केशव की उपासना करनी चाहिए, आराध्य को प्रतिमा में, अग्नि में, सूर्य में, जल में, अतिथि में अथवा अपने ही हृदय में पूजते हुए, पहले सामग्री, स्थान, स्वयं तथा प्रतिमा को शुद्ध करके (श्लोक 45-54)।



एक भक्त, स्वयं तथा उपासना की सामग्री शुद्ध करके, पावन प्रतिमा में भगवान् की दीप, पुष्प तथा धूप से आराधना करता है, और प्रत्येक कर्म को विश्वात्मा को अर्पित करता है (श्लोक 47-54)।

एवमग्न्यर्कतोयादावतिथौ हृदये च यः ।

यजतीश्वरमात्मानमचिरान्मुच्यते हि सः ॥ ५५ ॥

evam agny-arka-toyādāv atithau hṛdaye ca yaḥ yajatīśvaram ātmānam acirān mucyate hi saḥ

अर्थ: जो इस प्रकार भगवान् — विश्वात्मा — की अग्नि, सूर्य, जल आदि में, अतिथि में, अथवा अपने ही हृदय में उपासना करता है, वह शीघ्र ही मुक्त हो जाता है। (स्कन्ध 11, अध्याय 3, श्लोक 55)

इस अध्याय की प्रधान शिक्षाएँ

1. माया भगवान् की ही शक्ति है, जो आत्मा की मुक्ति के लिए है। जो मोहिनी शक्ति आत्मा को बाँधती है वह कोई पराई शक्ति नहीं, अपितु भगवान् की ही शक्ति है, जो उनके अंश-रूप देहधारी आत्माओं के भोग तथा अन्ततः मुक्ति दोनों के लिए विकसित हुई है (श्लोक 3-4)।
2. शरीर में आसक्ति ही बन्धन का मूल है। रचित शरीर को स्वरूप मानकर तथा स्वार्थ से कर्म करके, आत्मा असहाय भाव से जन्म-मृत्यु में घूमती है — समस्त चक्र इसी एक भूल पर घूमता है (श्लोक 5-7)।
3. परम कल्याण सच्चे गुरु से आरम्भ होता है। समस्त लाभों की, पार्थिव तथा स्वर्गिक, क्षणभंगुरता देखकर, जिज्ञासु ऐसे गुरु का आश्रय लेता है जो शास्त्र-निपुण, ज्ञान में स्थित तथा शान्त है (श्लोक 21)।
4. भक्ति उस प्रेम में परिपक्व होती है जो माया को पार करता है। भक्तों की संगति में हृदय पिघलता है — रोते, गाते, नाचते, फिर परम में मौन होते हुए — और ऐसा प्रेम ही जीव को इस अन्यथा दुर्लभ माया के पार उतार देता है (श्लोक 32-33)।
5. आत्मा अजन्मा साक्षी है, जो शुद्ध भक्ति से जानी जाती है। मन तथा वाणी की पहुँच से परे, अविनाशी आत्मा उस हृदय को साक्षात् प्रकट होती है जो भगवान् की प्रेममयी सेवा से शुद्ध हो चुका है (श्लोक 38-40)।
6. भगवान् को अर्पित कर्म कर्म से परे ले जाता है। आसक्ति-रहित तथा भगवान् को समर्पित कर्म — और सर्वत्र, यहाँ तक कि हृदय में भी, उन्हें अर्पित उपासना — आत्मा को शीघ्र मुक्त कर देते हैं (श्लोक 44, 55)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

यह अध्याय पहले एक विशाल सृष्टि-विज्ञान-सा प्रतीत हो सकता है — जन्मों का चक्र, लोकों का जलना तथा डूबना, तत्त्व का तत्त्व में लीन होना। फिर भी इसका हृदय अत्यन्त वैयक्तिक है। ऋषि माया की समस्त विशालता का पता केवल इसलिए लगाते हैं कि उसके सामने कुछ ऐसा छोटा और समीप का रख सकें जिसे हम थाम सकें: गुरु के चरण, उनकी संगति जो भगवान् से प्रेम करते हैं, शुद्ध हृदय से अर्पित एक उपासना का कर्म। वे हमसे विश्व पर विजय पाने को नहीं कहते; वे हमसे केवल इतना कहते हैं कि इस नश्वर शरीर को अपना स्वरूप मानना बन्द करें, और भक्ति को वह करने दें जो अकेला दर्शन नहीं कर सकता। पिप्पलायन के स्वच्छ नेत्रों पर सूर्य-प्रकाश के चित्र में गहरा आश्वासन है — आत्मा का सत्य हमारे प्रयास से निर्मित नहीं होता, अपितु प्रेम से स्वच्छ हुए हृदय को प्रकट होता है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, आविर्होत्र की शिक्षा के भाव में, एक उपासना का कर्म — चाहे कितना ही सरल हो — शुद्ध तथा एकाग्र हृदय से अर्पित करें। किसी पावन प्रतिमा, दीप, अथवा केवल अपने ही हृदय में, भगवान् को एक पुष्प, एक दीप, अथवा कुछ सच्चे शब्द अर्पित करें, और उस कर्म को सचेत रूप से उन्हीं को समर्पित करें। ऐसा करते हुए धीरे से जपें: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” यह छोटा, पूर्ण-हृदय अर्पण आपको स्मरण कराए कि

भगवान् की उपासना कहीं भी की जा सकती है — अग्नि तथा जल में, अतिथि में, और सर्वोपरि हृदय में — और ऐसी उपासना, निष्ठापूर्वक की गई, स्वयं माया के सागर के पार एक पग है।

उपसंहार

एकादश स्कन्ध का तृतीय प्रवचन, दुर्लभ पूर्णता के साथ, आत्मा की बन्धन से मुक्ति तक की समस्त यात्रा को प्रस्तुत करता है। अन्तरिक्ष माया को भगवान् की त्रिविध शक्ति के रूप में प्रकट करते हैं और जन्म के चक्र तथा महाप्रलय का वर्णन करते हैं; प्रबुद्ध सच्चे गुरु के आश्रय तथा भक्तों के प्रेम-पूर्ण जीवन की ओर संकेत करते हैं जो मनुष्य को माया के पार ले जाता है; पिप्पलायन अविनाशी आत्मा को अनावृत करते हैं, जो तर्क से नहीं अपितु शुद्ध, भक्त हृदय से जानी जाती है; और आविर्होत्र दिखाते हैं कि भगवान् को अर्पित कर्म तथा सर्वत्र उन्हें दी गई उपासना किस प्रकार शीघ्र मुक्ति की ओर ले जाते हैं। इन चारों स्वरों में एक ही आश्वासन बहता है: वही भगवान् जिनकी शक्ति आत्मा को बाँधती है, प्रेममयी भक्ति के द्वारा उसे मुक्त भी कर देते हैं। ज्यों-ज्यों राजा निमि के प्रश्न जारी रहते हैं, अगला प्रवचन उसी भगवान् के अद्भुत अवतारों की ओर मुड़ेगा।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य वाणी हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), एकादश स्कन्ध, अध्याय 3, पृष्ठ 524–530।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम • बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पंडित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र की आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिखाए गए हैं तथा उनके अर्थ सार-रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद अथवा टीका की पुनरावृत्ति नहीं है। किसी भी प्रकाशक से सम्बद्धता अथवा समर्थन का कोई संकेत नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-skandh-11-adhyay-3-maya-se-mukti-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज़डम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट